सुत्तनिपात में बौद्ध – दर्शन के सम्प्रदाय

डॉ0 अनिता कुमारी
सहायक प्राध्यापक
राजकीय महाविद्यालय कुकुमसेरी
जिला लाहौल स्पिति (हि0 प्र0)

हीनयान का मुख्य विचार बहुधर्मवाद हैं, महायान का मुख्य विचार धर्मों की शून्यता है। 'शून्यता' का अर्थ स्वाभाव–शून्य है।[1] प्रगतिशील विचार होने के कारण 'महायान' को अश्वघोष, भागार्जुन, असंग, आर्यदेव तथा वसुबन्धु आदि बड़े–बड़े विद्वानों ने अपनाया। महायान के कुछ विद्वानों के द्वारा हीनयान को अपनाये जाने पर महायान के साथ–साथ हीनयान का प्रभाव भी बढ़ता गया। यह परस्पर मिलन और भेद बहुत दिनों तक चला और इन दोनों की अनेक शाखाएँ एवं प्रशाखाएँ होती गईं।[2] इनमें हीनयान से सम्बद्ध दो दार्शनिक सम्प्रदाय वैभाषिक और सौत्रान्तिक तथा महायान से सम्बद्ध दो दार्शनिक सम्प्रदाय योगाचार और माध्यमिक विकसित हो गए।[3] ऐतिहासिक दृष्टि से इन दार्शनिक सम्प्रदायों को जन्म किसी एक निश्चित दिन या किसर एक व्यक्ति से नहीं हुआ है। उनके सिद्धान्त एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।[4] यह विभाजन 'सत्ता' विषयक महत्वपूर्ण प्रश्न को लेकर ही किया गया है। सत्ता की मीमांसा करने वाले बौद्ध–दर्शन के चार प्रमुख सम्प्रदायों का विवरण निम्नलिखित प्रकार के प्रस्तुत है–

1 वैभाषिक सम्प्रदाय

वैभाषिक सम्प्रदाय के मूल ग्रन्थ आर्य कात्यायनीपुत्र रचित 'ज्ञानप्रस्थानशास्त्र' के ऊपर एक विपुलकाय प्रामाणिक टीका का निर्माण हुआ जो 'विभाषा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस विभाषा नामक टीका के आधार पर ही सर्वस्तिवादियों का दूसरा नाम वैभाषिक पड़ा।[5] यशोमित्र ने अभिधर्मकोश की –स्फुटार्थी' नामक व्याख्या में वैभाषिक

1 बौद्ध–धर्म–दर्शन : पृष्ठ, 304
2 उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन : पृष्ठ , 145
3 संस्कृत साहित्य का विशद इतिहास : पृष्ठ, 299, भारतीय दर्शन का सामान्य विवेचन : पृष्ठ, 95
4 संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : पृष्ठ, 265
5 बुद्ध और बौद्ध धर्म– दर्शन : पृष्ठ, 50, भारतीय दर्शन का सामान्य विवेचन : पृष्ठ, 95

शब्द की यही व्याख्या की है।[1] वैभाषिक मतानुसार, संसार के समस्त पदार्थ सत्य हैं। चित तथा बाह्य–वस्तुओं का अस्तित्व है। उनका कहना है कि प्रत्येक वस्तु का ज्ञान प्रत्यक्ष को छोड़कर अन्य किसी उपाय से नहीं हो सकता।[2] वस्तु के प्रत्यक्ष हुए बिना उसका ज्ञान प्राप्त न होने से इस मत को बाह्यार्थ प्रत्यक्षवादी दर्शन कहा गया है।[3]

परमार्थ के अनुसार जो अतीत, अनागत, प्रत्युत्पन्न, आकाश, प्रतिसंख्यानिरोध और अप्रतिसंख्यानिरोध के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, वे सर्वास्तिवादी हैं। सर्वास्तिवादी परम्परा के प्रमुख आचार्य वसुबन्धु ने अपने गुरू गुद्धमित्र के विजेता सुप्रसिद्ध सांख्याचार्य विंध्यवासी कृत 'सांख्यसप्तति' के खण्डनार्थ 'परमार्थ–सप्तति' की रचना की थी।[4] इनके हीनयान सम्बन्धी ग्रन्थ[5] – परमार्थ – सप्तति, तकशास्त्र, वादविधि तथा अभिधर्मकोश हैं। संघभद्र ने वैभाषिक सिद्धान्तों के पुनरूद्धान के निमित – अभिधर्मन्यायानुसार या कोशकरका तथा अभिधर्मसमयदीपिका नामक दो ग्रन्थों का निर्माण किया था।[6]

वैभाषिक का विशाल साहित्य आज भी चीनी भाषा में ही सुरक्षित है। मूलतः यह साहित्य संस्कृत भाषा में ही था, परन्तु अनादृत होने से संस्कृत मूल सर्वथा विलुप्त हो गया। पंचम शतक में भी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा कुमारगुप्त के राज्यकाल में सर्वास्तिवाद का महत्व बढ़ गया था। वसुबन्धु तथा स्थूलभद्र जैसे आचार्यो ने अपने नवीन पाण्ति्यपूर्ण ग्रन्थों से इसे और अधिक दृढ़ बना दिया था। कुछ दिन तक यह

1 विभाषया दीव्यन्ति चरन्ति वा वैभाषिकः, विभाषां वा विदन्ति वैभाषिकाः। उक्थादिप्रक्षेपाञ् ठक्।
अभिधर्मकोशम्: भाग–1, पृष्ठ 15
2 वाचस्पति गैरोला, भारतीय दर्शन : पृष्ठ, 155–156
3 उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन : पृष्ठ, 151
4 एवमाचार्यवसुबन्धु प्रभृतिभिः कोशपरमार्थसप्ततिकादिषु अभिप्राप्रकाशनात् पराक्रान्तम। अतस्तत एवावगन्तव्यम – तत्संग्रह। विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि : ग्रन्थ– परिचय, पृष्ठ, 66
5 वाचस्पति गैरोला, भारतीय दर्शन : पृष्ठ, 153, सर्वदर्शनसंग्रहः पृष्ठ, 96
6 बौद्ध संस्कृति का इतिहास : पृष्ठ, 57, उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन : पृश्ठ, 151

मत अवश्य चमकता रहा, परन्तु यह चमक बुझते हुए दीपक के अन्तिम प्रकाश के समान ही प्रतीत हुई थी।[1]

2 सौत्रान्तिक सम्प्रदाय

सौत्रान्तिक मत बाह्मार्थानुमेयवादी है। इस मत के अनुसार बाह्म – पदार्थ नाशवान् होने के कारण उनका प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव नहीं है। बाह्म – वस्तुओं का ज्ञान वस्तु – जनित मानसिक आकारों से अनुमान के द्वारा प्राप्त होता हैं।[2] ये चित तथा बाह्म जगत दोनों की सत्ता स्वीकार करते हैं। यदि बाह्म–वस्तुओं का अस्तित्व न माना जाए तो उनकी प्रतीति सम्भव नहीं होगी।[3] वस्तुओं के वर्तमान रहने पर ही उनका प्रत्यक्ष होता है। परन्तु यह कहना उचित नहीं है कि वस्तु एवं उसका ज्ञान मकालीन होने से अभिन्न है। बाह्म – वस्तुओं के अनेक आकार होने से, ज्ञान के भिन्न –भिन्न आकार होते हैं। विभिन्न आकार के ज्ञानों से हम उनके कारण–स्वरूप विभिन्न

बाह्य– वस्तुओं का अनुभव कर सकते हैं। बौद्ध सौत्रान्तिकों के अनुसार ज्ञान के चार कारण हैं[4] – आलम्बन, समनन्तर, अधिकारी और सहकारी। इन चार कारणों के संयोग से ही वस्तुओं का ज्ञान सम्भव होता है। ज्ञान के आकार ज्ञात – वस्तुओं के अनुरूप होते हैं और प्रत्यक्ष वस्तुओं के जो आकार हम देखते हैं वे ज्ञान के आकार मन में होते हैं। इस प्रकार बाह्य–वस्तुओं का ज्ञान वस्तु–जनित मानसिक आकारों से अनुमान के द्वारा प्राप्त होता है।

सौत्रान्तिकों की आसथा भगवान् बुद्ध के आध्यात्मिक उपदेशों पर अधिक होने के कारण ये लोग अभिधर्मकोश की अपेक्षा भगवान बुद्ध के सुत्त पिटक – गत सूत्रों को

1 बौद्ध – दर्शन – मीमांसा : 1/4, पृष्ठ, 36

2 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा : पृष्ठ, 153

3 डी0 आर0 जाटव, भारीतय दर्शन : पृष्ठ, 78

4 ते चत्वारः प्रत्ययाः प्रसिद्धा आलम्बन – समनन्तर – सहकार्य– धिपतिरूपाः। उमाशंकर शर्मा, सर्वदर्शनसंग्रहः : पृष्ठ, 85, बौद्ध प्रमाण मीमांसा : पृष्ठ, 20

अधिक प्रामाणिक मानते थे।[1] इनके लिए सुत्त पिटक स्वतः प्रमाण हैं तथा अभिधर्मकोश परतः प्रमाण। इन सुत्त अर्थात सूत्रों को माननीय समझने के कारण ये सौत्रान्तिक कहलाने लगे।[2]

सातवीं शती के चीनी यात्री ह्वेनच्वांग के कथनानुसार सौत्रान्तिक मल के आदि प्रवर्तक कुमारलाल ही थे।[3] 'कल्पना मण्डितिका' इनकी एकमात्र रचना है। इस ग्रन्थ का पूरा नाम 'कल्पनामण्डतिका – दृष्टान्त – पंक्ति' है। [4] इनके शिष्य श्रीलाभ ने अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादनार्थ 'सौत्रान्तिक विभाषा' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। [5] धर्मत्रात, बुद्धदेव तथा यशोमित्र इस मत के समर्थक आचार्य हुए हैं। अभिधर्मकोश की विस्तृत व्याख्या 'स्फुटार्था' यशामित्र की महत्वपूर्ण रचना है।[6]

3 योगाचार (विज्ञानवाद) सम्प्रदाय

योग के आचरण के आधार पर विज्ञानवादी बाह्य जगत् की काल्पनिकता को प्रमाणित करने का प्रयास करते थे। योग की प्रक्रियाओं का अनुसरण करना विज्ञ्ज्ञनवाद के लिए उपयुक्त होने के कारण विज्ञानवाद को योगाचार भी कहते हैं।[7] विज्ञानवाद के अनुसार, जिस चित के द्वारा इस जगत की मिथ्या प्रतीत होती है उस

चित को ही सत्य मानना पड़ेगा। चित ही कमात्र सत्य पदार्थ है, क्योंकि चित या मन के द्वारा ही हम विचार–प्रतिपादन की प्रक्रिया को सम्पन्न करते हैं। केवल विज्ञान (चित्त) को ही सत्य

1 कः सौत्रान्तिकार्थः। ये सूत्रप्रामाणिकाः, न तु शास्त्रप्रामाणिकास्ते सौत्रान्तिकाः – स्फुटार्था। अभिधर्मकोशम : भाग– 1, पृष्ठ, 15
2 भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास : पृष्ठ, 131
3 बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शनः पृष्ठ, 144, बौद्ध दर्शन प्रस्थान : पृष्ठ, 81
4 बौद्ध संस्कृत काव्य– समीक्षा : पृष्ठ, 235
5 बौद्ध – दर्शन– मीमांसा : 3 / 16, पृष्ठ 185–186
6 उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन : पृष्ठ, 162
7 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा : पृष्ठ, 151

मानने के कारण इस मत का नाम 'विज्ञानवाद' पड़ा है।[1] यह संसार असत्य है और जगत की सभी बस्तुएँ भी असत्य हैं। समस्त भौतिक पदार्थ, जो हमारे मन से बाह्य मालूम पड़ते हैं वे सभी हमारे मन के अन्तर्गत हैं। धर्मकीर्ति का मानना है कि नीलवर्ण और उसके ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों की अलग–अलग सत्ता नहीं हैं वस्तुतः दोनों एक हैं। लंकावतार सूत्र में कहा गया है – ' चित की प्रवर्तित होता है, चित ही विमुक्त होता है, चित ही उत्पन्न होता है, चित ही निरूद्ध होता है अन्य कोई भी पदार्थ चित के अतिरिक्त विद्यमान नहीं है।[2] यही चित चेतना क्रिया से सम्बद्ध होने से चित, मनन क्रिया से सम्बद्ध होने से मन औश्र विषयों को ग्रहण करने के कारण विज्ञान कहा जाता है। चित की सत्ता को सर्वोपरि मानने के कारण विज्ञानवाद का कहना है कि शरीर तथा जितने भी अन्य पदार्थ हैं वे सभी हमारे मन के भीतर विद्यमान हैं।[3]

मैत्रेयनाथ इस मत के आदि प्रवर्तक थे।4 इन्होंने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया था, उनके कुछ ग्रन्थों के नाम हैं[5] – महायानसूत्रालंकार, धर्मधर्मता– विभंग, मध्यान्तविभंग, महायान–उत्तरतन्त्र तथा अभिसमयालंकारकारिका। डॉ0 उमेश मिश्र ने एक छठे ग्रन्थ 'योगाचार भूमिशास्' का लेखक भी इसी को माना है।[6] मैत्रेयनाथ के शिष्य असंग के ग्रन्थ – महायान सम्परिग्रह, प्रकरण आर्यवाचा, योगाचार भूमिशास्त्र अथवा सप्तदश – भूमिशास्त्र तथा महायानसूत्रालंकार हैं।[7] इस सिद्धान्त की उद्भावना तो

1 बुद्ध और बौद्ध धर्म–दर्शन : पृष्ठ, 52, ममता मिश्रा, भारतीय दर्शन : पृष्ठ, 98
2 चितं प्रवर्तते चितं चित्तमेव विमुच्यते।
चितं हि जायते नान्यच्चित्तनेव निरूध्यते।। हिन्दी संत : साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव : पृष्ठ, 91
3 वाचस्पति गैरोला, भारतीय दर्शन : पृष्ठ, 156
4 उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन : पृष्ठ, 164, बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन : पृष्ठ 148

5 आर्यमैत्रेयनाथविरचितानी पंचेमानि शास्त्राणि – (1) अभिसमयालड.्कारः (2) महायानसूत्रालड.कारः (3) मध्यान्तविभागः (4) धर्म–धर्मताविभंगः (5) उत्तरतन्त्रमिति। अभिसमयालड.कारवृतिः स्फुटार्थाः प्राक्कथन, पृष्ठ, –क–

6 उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन : पृष्ठ, 168

7 संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : पृष्ठ, 291

आचार्य मैत्रेयनाथ ने की, पर उसे आचार्य असंग और वसुबन्धु ने तर्क की दृढ़ नींव पर रखा। वसुबन्धु के शिष्य आचार्य दिड्.नाग ने 'प्रमाण–समुच्चय' जैसा प्रौढ़ ग्रन्थ लिखकर बौद्धन्याय का शिलान्यास रखा जिसे धर्मकीर्ति ने अपने 'प्रमाणवार्तिक' से मण्डित कर न्यायमन्दिर के ऊपर कलश रख दिया।[1] गुप्तों का काल ग्राह्मण – साहित्य का ही उत्कर्ष युग नहीं है, प्रत्युत बौद्ध – दर्शन की महती तथा चतुरस उन्नति का भी सुवर्ण युग है।[2]

4 माध्यमिक (शून्यवाद) सम्प्रदाय

भगवान् बुद्ध न तो घोर तपस्यावाद को चाहते थे और न सांसारिक भोगवाद को पसन्द करते थे। उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त कर लेने पर संसार के लोगों के कल्याण के लिए दोनों मार्गों का परित्याग कर 'मध्यम मार्ग' का अनुसरण करने पर उन्हें 'माध्यमिक' नाम से पुकारते थे।[3] माध्यमिक लोग न तो बाह्यार्थ को मानते ळो और न ही विज्ञान को। 'शून्य' को ही परम तत्व मानने के कारण माध्यमिक सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त को शून्यवाद भी कहते हैं। जो न सत् है, न असत् है, न सतसत् है और न दोनो से भिन्न हीहै। इसप्रकार इन चारों सम्भावित कोटियों से विलक्षण ही एक तत्व है, जिसे माध्यमिकों ने अपना 'परम तत्व' कहा है, ववही शून्य कहलाता है।[4] इस दार्शनिक सिद्धान्त के प्रवर्तक के रूप में 'नगार्जुन– का नाम विशेष रूप से लिया जाता है।[5]

शून्यवाद के अनुसार चित्त स्वतन्त्र नहीं है। पदार्थ की भॉति विज्ञान भी क्षणिक है। शून्य ही परमार्थ है। जगत् की सत्ता व्यावहारिक और शून्य की सत्ता पारमार्थिक है।

1 बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास : पृष्ठ, 449–450

2 बौद्ध संस्कृत काव्य–समीक्षा : पृष्ठ, 309

3 उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन : पृष्ठ, 167, डी0 आर0 जाटव, भारतीय दर्शन : पृष्ठ, 81

4 न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्।

चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्वं माध्यमिका विदुः।। बोधिचर्यावतारः : (प्रज्ञाकरमतिकृतपंजिकया सनाथः) पृष्ठ, 271

5 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, भारतीय दर्शन : पृष्ठ, 87

चारमार्थि शून्य ही सत्य है।[1] सामान्यतः वस्तुओं के अस्तित्व की प्रतीति तो होती है, परन्तु जब हम उनके तात्विक स्वरूप को जानने का प्रयत्न करते हैं तब मानव बुद्धि असफल हो जाती है, क्योंकि माध्यमिक वस्तुओं की पारमार्थिक सत्ता को अवर्णनीय बतलाते हैं। नागार्जुन ने इसी वर्णनातीत तत्व तथा प्रतीत्यसमुत्पाद को शून्यता कहा है।[2] क्योंकि कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसकी उत्पति किसी और पर निर्भर न हो। माध्यमिक – शून्यवाद

के प्रवर्तक नागार्जुन के अनुसार शून्यता ही यथार्थ सत्य है और ये दो प्रकार के सत्य मानते हैं – 'संवृति – सत्य' तथा 'परमार्थ–सत्य'।[3] इन्होंने माध्यमिक – कारिका, युक्तिषष्टिका, शून्तासप्तति, विग्रहव्यावर्तनी, प्रज्ञापारमिता – शास्त्र आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। इसके अतिरिक्त शून्यवादी आचार्य आर्यदेव के ग्रन्थों में 'चतुःशतक' का नाम उल्लेखनीय है। चन्द्रकीर्ति के माध्यकिावतार, प्रसन्नपदा, चतुःशतक – व्याख्या आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। शान्तिदेव ने शिक्षासमुच्चय, सूत्रसमुच्चय, बोधिचर्यावतार आदि ग्रन्थों की रचना की।[4]

1 वाचस्पति गैरोला, भारतीय दर्शन : पृष्ठ, 157

2 यः प्रतीत्यसमुत्पादः शून्यतां तं प्रचक्ष्महे।

स प्रज्ञप्तिरूपादाय प्रतिपत् सैव मध्यमा।। मध्यमकशास्त्रम् : मूलमध्यमककारिकाः, 24/18

3 द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना।

लेकसंवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थतः।। वही, 24/8

4 उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन : पृष्ठ 167